International Journal of Humanities and Social Science Research
ISSN: 2455-2070; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 21-06-2019; Accepted: 24-07-2019
www.socialsciencejournal.in
Volume 5; Issue 5; September 2019; Page No. 112-114

अब्दुल बिस्मिल्लाह कृत 'अपवित्र आख्यान' में निहित भाषायी अंतर्द्वंद्व

नवीन सिंह
शोधार्थी, पी-एच.डी, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश, भारत

प्रस्तावना

''भाषा के भी अपने धर्म होते हैं, या धर्मों की अपनी खास भाषाएँ होती हैं''[1] जमील के मन में यह विचार, समाज के भीतर आम जन-मानस में हिंदी और उर्दू को हिंदू और मुसलमानों की भाषा मानने के कारण प्रकट होते हैं। सदियों से एक दूसरे के संपर्क में रहते हुए विभिन्न संस्कृतियों के मेल-जोल से विकसित हुई हिंदुस्तानी भाषा, खड़ी बोली हिंदी और उर्दू के रूप में विभक्त होकर आज हमारे सामने मौजूद है। आज जिसे हम उर्दू कहते हैं, पहले उसे हिंदी, हिंदवी, दकनी, देहलवी और रेख़्ता के नाम से जाना जाता था। उर्दू में फारसी के साथ-साथ हिंदुस्तान के विभिन्न प्रदेशों की भाषाओं से शब्दों का आदान-प्रदान होता रहा है। इसी तरह खड़ी बोली हिंदी ने भी संस्कृत से प्रभावित होकर, अवधी, ब्रज, भोजपुरी, मैथिली, राजस्थानी जो कि साहित्यिक भाषा के रूप में स्थापित थीं, उन्हें अपना पूर्ववर्ती बताते हुए स्वयं को स्थापित किया।

इस भाषायी भेदभाव को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझना चाहिए। सन 1757 ई. में प्लासी और सन 1764 ई. में बक्सर की लड़ाई में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने जीत हासिल की। उन्होंने अपनी इस जीत को स्थायित्व प्रदान करने के लिए भाषायी और धार्मिक विभाजन करने की दूरगामी रणनीति अपनायी। इसमें ईस्ट इंडिया कंपनी के सेवक शिक्षाविदों ने बड़ी भूमिका निभाई।

इसके संबंध में आचार्य शुक्ल लिखते हैं

"इसलिए जब उन्हें देश की भाषा सीखने की आवश्यकता हुई और वे गद्य की खोज में पड़े तब दोनों प्रकार की पुस्तकों की आवश्यकता हुई- उर्दू की भी और हिंदी (शुद्ध खड़ी बोली) की भी। पर उस समय गद्य की पुस्तकें वास्तव में न उर्दू में थीं न हिंदी में।... इसलिए जब संवत् 1860 में फोर्ट विलियम कॉलेज (कलकत्ता) के हिंदी उर्दू अध्यापक जान गिलक्राइस्ट ने देशी भाषा की गद्य पुस्तकें तैयार कराने की व्यवस्था की तब उन्होंने उर्दू और हिंदी दोनों के लिए अलग-अलग प्रबंध किया।''[2]

फोर्ट विलियम कॉलेज (कलकत्ता) इन गतिविधियों का केंद्र बना। 1857 में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ भारतीय सैनिकों व किसानों ने आजादी की पहली सशस्त्र जंग का ऐलान कर हिंदू-मुस्लिम एकजुटता का परिचय दिया। ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासन हिंदू-मुस्लिम के बीच भाषायी व सांप्रदायिक विभाजन की स्थितियाँ पैदा करने की कोशिश में लग गया।

भारतेंदु युग के नाम से जाना जाने वाला खड़ी बोली हिंदी का 'नवजागरण काल' वास्तव में भाषाई सांप्रदायिकता और हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान के नारे के तहत हिंदू-पुनरुत्थान का दौर था। उसी दौर में मुस्लिम भद्रवर्ग ने उर्दू को इस्लाम के साथ जोड़कर इसे अपनी धार्मिक अस्मिता का प्रतीक बनाया। वास्तव में उर्दू उनकी धार्मिक आस्था से ज्यादा उनकी भौतिक अस्मिता का, सरकारी नौकरियों पर उनके कब्जे का प्रतीक थी। क्योंकि कविता व ज्ञान की भाषा फारसी थी और धर्म की भाषा अरबी थी। लिपि के बहाने उर्दू जुबान का विरोध करने की प्रवृत्ति कहीं न कहीं मुस्लिम विरोधी मानसिकता से प्रेरित रही है। भारतेंदु युग के समय से यह विवाद बढ़ता रहा जिसमें "उर्दू पतुरिया और गृहवधू हिंदी"[3] जैसे विशेषण आग में घी का काम करते रहे और भाषा का यह विभाजन अंततः देश के विभाजन तक जा पहुँचा।

'भाषा' व्यक्त वाणी को कहते हैं जिसके माध्यम से विचारों अथवा भावों की अभिव्यक्ति संभव हो पाती है। भाषा को किसी धर्म से जोड़ना किसी भी प्रकार से तर्कसंगत नहीं है। उपन्यास 'अपवित्र आख्यान' में मुख्य पात्र जमील को भाषायी भेदभाव का शिकार होना पड़ता है। जमील मुस्लिम परिवार में जन्म लेता है फिर भी उसकी रूचि हिंदी में होती है। वह 'हिंदी में कविताएं और कहानियां लिखता है। जमील भाषा को किसी धर्म का नहीं बल्कि स्वतंत्र मानता है। जमील की भाषा से संपर्क में आने वाला हर व्यक्ति धोखा खा जाता है कि वह हिंदू है। उसका मित्र इकबाल ये देखकर जमील से कहता है कि 'तुम्हें हिंदू घर में जन्म लेना चाहिए।'

अशिक्षितों ही नहीं शिक्षितों के भीतर भी हिंदी और उर्दू को हिंदुओं और मुसलमानों की भाषा मानने का भ्रम है। यासमीन के पिता जो कि शिक्षित और संभ्रांत मुसलमान हैं उनके भीतर जो हिंदी को लेकर पूर्वाग्रह है वह उनके कथन से स्पष्ट हो जाता है-

> ''फिर? हिंदी में लिखकर क्या करोगे? शन्नो से भी मैं यही कहता हूँ। उर्दू हमारी मादरी ज़बान है।''[4]

भले ही धर्म और भाषा एक सिक्के के दो पहलू न हों किंतु हकीकत यह है कि हिंदी को हिंदू और ज्यादातर मुसलमान उर्दू को अपनी मादरी जुबान घोषित करने में आगे रहते हैं।

समाज में हमेशा ही भाषा के दो रूप प्रचलित रहे हैं- एक शिष्ट या साहित्यिक भाषा व दूसरी देशी भाषा। यह शिष्ट भाषा हमेशा से सत्ता के निकट बने रहने वाले प्रभु वर्गों की ही भाषा रही। कभी भी सत्ता की भाषा सामान्य जनता की भाषा नहीं रही। देशी भाषा आम जनता के बोलचाल की भाषा रही है। पहले जब संस्कृत सत्ता व साहित्य की भाषा बनी हुई थी तब पालि जनता की भाषा थी। इसी कारण बुद्ध ने अपने उपदेश जनता की भाषा पालि में ही दिए थे। अंग्रेजी राज कायम होने से पहले दरबारों की राजभाषा फारसी थी। उस समय हिंदी और उर्दू का अलगाव इस प्रकार नहीं था क्योंकि फारसी पढ़ने वालों में हिंदू और मुसलमान दोनों थे। इस संबंध में रामविलास शर्मा लिखते हैं कि-

''उर्दू को न किसी अलग कौम की, न किसी धर्म-विशेष के अनुयायियों की भाषा कहा जा सकता था। खड़ी बोली पर फारसी का असर पड़ने से जो विशेष शैली बनी, उसके कारण सांस्कृतिक और राजनीतिक थे। फारसी के राजभाषा होने और दरबारी कवियों के ईरानी शायरी से प्रभावित होने को हम धार्मिक प्रक्रिया नहीं कह सकतें, उसे सांस्कृतिक और राजनीतिक प्रक्रिया ही मानना चाहिए। यह न भूलना चाहिए कि हिंदुओं का बहुत सा धार्मिक साहित्य उर्दू में लिखा गया है।''[5]

[1] बिस्मिल्लाह, अब्दुल, अपवित्र आख्यान, पृ.-19

[2] शुक्ल, रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.-285

[3] तलवार, वीरभारत, रस्साकशी, पृ.-312

[4] बिस्मिल्लाह, अब्दुल, अपवित्र आख्यान, पृ.-15

[5] शर्मा, रामविलास, भाषा और समाज, पृ.-312

उर्दू के अरबी-फारसीकरण और हिंदी के संस्कृतकरण से दोनों भाषाओं के बीच फासला तो बढ़ा ही, अपने-अपने समाज की आम भाषा से, यहाँ तक कि शहरी मध्यवर्ग की बोलचाल की भाषा से भी फासला बढ़ा। कोई भी भाषा किसी धर्म की नहीं होती बल्कि भाषा उसकी होती है जो उसका व्यवहार करता है। उपन्यास 'अपवित्र आख्यान में ओम प्रकाश गुप्ता उर्दू को विदेशी और मुसलमानों की भाषा बताते हुए जमील के हिंदी बोलने पर आश्चर्य जाहिर करते हैं-

''आप मुसलमान होकर भी बहुत अच्छी हिंदी बोलते हैं।... मगर प्रायः मुसलमान लोग उर्दू बोलते हैं।
जी नहीं, यह बात गलत है। जमील ने हस्तक्षेप किया।

और आप कह रहे थे, कि उर्दू विदेशी भाषा है, तो यह भी गलत है। उर्दू इसी देश की भाषा है। यहीं इसका जन्म हुआ है। और यह भी सत्य नहीं है कि उर्दू सिर्फ मुसलमानों की भाषा है। भाषा चाहे कोई भी हो, धर्म से उसका कोई संबंध नहीं होता। भाषा उसी की है जो उसका व्यवहार करे।''[6]

उर्दू को सभी मुसलमानों की भाषा के रूप में प्रचारित किया जाता है जबकि उर्दू कभी भी आम मुसलमानों की भाषा नहीं रही है और देश के अधिकांश मुसलमान उर्दू नहीं बोलते। मुसलमानों की बड़ी आबादी असम, पश्चिम बंगाल, केरल तथा जम्मू और कश्मीर में है। यहाँ के ज्यादातर मुसलमान इन प्रदेशों और क्षेत्रों की भाषा में ही बोलते, काम करते हैं। उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे उत्तरी प्रदेशों में भी मुसलमान का सिर्फ ऊपरी तबका ही उर्दू का प्रयोग करता है। यहां के अधिकांश आम मुसलमान स्थानीय बोलियों, भाषाओं का ही प्रयोग करते हैं। ऐसे में यह सवाल महत्वपूर्ण है कि उर्दू को मुसलमानों की सांस्कृतिक पहचान के सवाल के तौर पर उठाने से किसे लाभ मिल रहा है? इसको समझने के लिए डॉ. अंबेडकर द्वारा मुसलमानों के संबंध में 'पाकिस्तान की परिकल्पना (Thoughts of Pakistan) में लिखित कथन उद्धृत करना प्रासंगिक होगा-

''मुसलमान अपने में दो वर्ग स्वीकारते हैं- 1. अशरफ और 2. अजलाफ़। अशरफ का आशय है अभिजात वर्ग। इसमें शुद्ध विदेशी जातियों के वंशज तथा वे मुसलमान शामिल हैं, जो पहले उच्च वर्ग के हिदू थे और उन्होंने मुस्लिम धर्म ग्रहण कर लिया था। अन्य सभी मुसलमान अजलाफ हीन या नीच समझे जाते हैं। इसमें सभी नीची जातियों से संबंधित लोग मुसलमान बनने वाले शामिल हैं। इन्हें कमीना, रिजाल, और रसील भी कहा जाता है। कुछ स्थानों पर एक तीसरा वर्ग भी है जिन्हें अरजाल यानी निकृष्ट कहा जाता है। उनके साथ कोई मुसलमान उठना, बैठना पसंद पसंद नहीं करता। मस्जिद में उनका प्रवेश तथा आम कब्रिस्तान का प्रयोग उनके लिए वर्जित है।''[7]

इससे स्पष्ट होता है कि मुसलमानों का एक विशिष्ट व संभ्रांत वर्ग, जो इस देश का शासक रहा है, आज भी अपने को शासक वर्ग ही समझता है। और इस वर्ग के लोग तथाकथित छोटी जाति से संबंधित मुसलमानों को हेय दृष्टि से देखते हैं। मुट्ठी भर ऊँची जाति वाले मुसलमानों के वर्ग प्रतीकों या उनके लिए मतलब रखने वाले प्रतीकात्मक मुद्दों को ही पूरे मुस्लिम समुदाय के रूप में पेश किया जाता रहा है जबकि उनकी पहचानें व प्रतीक भी उतने ही विविध और स्थानीय रहे हैं। मुस्लिम समुदाय को एकजुट या एक समान समुदाय बताना उच्च जाति या वर्ग के लोगों द्वारा अपने छोटे से समूह के हितों को सुरक्षित बनाए रखने का ही फार्मूला मात्र है। उपन्यास के भीतर अंसार अहमद साहब इसी वर्ग से आते हैं जिन्हें ''जातिगत श्रेष्ठता पर उन्हें सिद्दीकी साहब से भी ज्यादा आस्था थी। तथाकथित नीची जाति के मुसलमानों से वे नफरत करते थे।''[8] सिद्दीकी साहब, जिन्हें 'मुसलमानी ब्राह्मण' कहते हैं। इसी वर्ग के अंतर्गत नकवी साहब, डॉ. सादिक व यासमीन भी आती हैं जो जमील को भाषायी भेदभाव बनाए रखने के लिए अपने वर्ग में शामिल करने की कोशिश करते हैं-

''मुझे उस बुक फेयर में हिंदी की मुसलमान विदुषी के रूप में आमंत्रित किया गया है। अगर आप भी हिंदी की सेवा करने के साथ-साथ मुसलमान भी बने रहते तो यह अवसर कभी आपको भी मिल सकता था।''[9]

अपने निजी स्वार्थों के लिए छोटे से समूह ने पूरे समाज को जाति, धर्म, भाषा के आधार पर बाँट कर रख दिया। भाषा व्यवहार करने वाले की होती है न कि किसी धर्म विशेष की। यह भेदभाव उर्दू के साथ ही नहीं हिंदी के साथ भी है। जिस प्रकार, उर्दू को सभी मुसलमानों की भाषा बता दिया जाता है उसी प्रकार हिंदी को हिंदुओं की भाषा। नादाँ साहब जमील को हिंदी बोलते हुए देखकर उन्हें हिंदू समझ लेते हैं यह इसी मानसिकता का परिचायक है-

''मगर साहब आप भी कमाल के शख्त है। क्या खूबी से उनकी जुबान बोल लेते हैं। 'किनकी?'
'हिंदुओं की। हमसे तो भई, एक लफ्ज भी नहीं बोला जाता।'
'नहीं नहीं, मैं हिंदुओं की जुबान नहीं, हिंदी जुबान बोल रहा था। और आप तो जानते ही होंगे कि मिर्जा ग़ालिब ने भी अपनी जुबान को हिंदवी कहा है।''[10]

यह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है कि जिस खड़ी बोली हिंदी के पहले कवि अमीर खुसरो हों, रहीम, जायसी, रसखान जैसे बड़े कवि जिसका गौरव हों, एक पूरी की पूरी प्रेम-काव्यधारा मुस्लिम सूफी कवियों की हो, परवर्तीकाल में भी बहुत से गैर-हिंदू व गैर हिंदी रचनाकार हों, उसे मात्र हिंदुओं की भाषा कह दिया जाता है। दोनों समुदायों में उपस्थित प्रभु वर्ग ने अपनी सत्ता को चालाकी से बचाए रखने के लिए भाषा को सांप्रदायिक रूप दिया। एक सांप्रदायिकता ने दूसरी सांप्रदायिकता को खत्म नहीं किया बल्कि बलिष्ठ ही बनाया। आज जिस प्रकार हिंदूवादी ताकतें भारत को एक भाषा, एक राष्ट्र बनाने के लिए प्रयासरत हैं यह भाषा को लेकर राजनीति करना देश के लिए भी घातक होगा। प्रेमचंद ने इस स्थिति को भांपते हुए 'साहित्य का उद्देश्य' नामक लेख में लिखा है-

''जीवित भाषा तो जीवित देह की तरह बराबर बनती रहती है। शुद्ध हिंदी तो निरर्थक शब्द है। जब भारत शुद्ध हिंदू होता तो उसकी भाषा शुद्ध हिंदी होती। जब तक यहाँ, मुसलमान, ईसाई, पारसी, अफगानी सभी जातियाँ मौजूद हैं, हमारी भाषा भी व्यापक रहेगी।''[11]

समाज ने भाषाओं को भी पवित्र और अपवित्र की श्रेणी में बाँटना दिया है। संभ्रांत वर्ग के लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा को श्रेष्ठ भाषा का दर्जा दिया जाता है। जबकि कमजोर तबके की भाषा को दलित या अछूत समझा जाता है। भाषा के साथ इस प्रकार का विभाजन न्यायसंगत नहीं है। विवेच्य उपन्यास में तथाकथित उच्च जाति के हिंदू अपनी भाषा संस्कृत अथवा संस्कृतनिष्ठ हिंदी को मानते हैं और तथाकथित छोटी जाति के लोगों को संस्कृत से दूर रखने की कोशिश करते हैं। उनकी नजर में अछूत (तथाकथित छोटी जाति के लोग) और मुसलमान एक हैं। जमील को 'रामचरित मानस' पढ़ने और संस्कृत विषय पढ़ने से पंडित जी मना करते हैं। जमील को यह बात नहीं समझ आयी कि आखिर-

''वह संस्कृत क्यों न पढ़े? वह रामचरितमानस को छू क्यों नहीं सकता?... मगर भाषा? पुस्तक? इन सबका छुआछूत से क्या रिश्ता है?''[12]

यही हाल मुस्लिम अभिजात्य वर्ग का भी है, वे उर्दू को अधिक शुद्ध और श्रेष्ठ मानते हैं और उसकी तुलना में हिंदी को हीन मानते हैं। जमील जब डॉ. रिज़वी को अमीर खुसरो का एक शेर सुनाता है तब-

[6] बिस्मिल्लाह, अब्दुल, अपवित्र आख्यान, पृ.-90

[7] किशोर, नन्द, भारत में बौद्ध धर्म, इस्लाम तथा सिख-धर्म, पृ.-181

[8] बिस्मिल्लाह, अब्दुल, अपवित्र आख्यान, पृ.-64

[9] वही, पृ.-158

[10] बिस्मिल्लाह, अब्दुल, अपवित्र आख्यान, पृ.-94

[11]

[12] बिस्मिल्लाह, अब्दुल, अपवित्र आख्यान, पृ.-21

''डॉ. रिजवी मुस्कराए, 'ऐसी शायरी कोई मुसलमान ही कर सकता है। आपके तुलसी-फुलसीदास क्या खाकर लिखते ऐसी चीज?''[13]

भाषा सामाजिक विकास का साधन है, समाज के साथ भाषा भी विकसित होती है। हिंदी और उर्दू का अलगाव इतना अधिक नहीं होता यदि उनकी लिपि एक होती। शिक्षा और अध्यापन का कार्य ज्यादातर मुल्लाओं और पुरोहितों के हाथ में ही था। उस समय समाज में सामंती तत्व अधिक हावी थे। जिसमें शिक्षा का सामान्य अर्थ धार्मिक शिक्षा से लिया जाता था। हिंदुओं और मुसलमानों के धर्म अलग-अलग थे, इसलिए उनकी धार्मिक शिक्षा भी अलग-अलग होती थी। इसलिए दोनों समुदायों ने अपनी-अपनी अलग लिपि का प्रयोग शुरू कर दिया। आज भले ही हिंदी को नागरी लिपि से बांधकर रखा जा रहा हो लेकिन शासक वर्ग की भाषा अंग्रेजी है इसलिए उस पर अंग्रेजी का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। जिस कारण हिंदी को भी रोमन लिपि द्वारा गैर-हिंदी भाषी के लिए सुगम बना दिया गया है लेकिन शुद्धतावादी इसका वर्चस्व न चाहते हुए भी स्वीकार कर रहे हैं। असगर वजाहत कहते हैं-

''विज्ञापन हिंदी में दिए जाते हैं और लिपि रोमन होती है। फिल्म इंडस्ट्री में स्क्रिप्ट रोमन लिपि में लिखी जाती है। एक्टर रोमन लिपि पढ़ता है। कारण यह है कि अभिनेता देश के ऐसे भाग से भी आते हैं जो हिंदी क्षेत्र नहीं है। वे हिंदी बोल और समझ तो लेते हैं लेकिन हिंदी लिपि पढ़ नहीं पाते।... एस.एम.एस और ई-मेल में भी लोग धड़ाके से रोमन लिपि में हिंदी लिख रहे हैं।''[14]

भाषा को धर्म और धर्म को राजनीति से जोड़कर भाषा का राजनीतिकरण किया गया। सत्ता की अपनी अलग भाषा होती है। शासक वर्ग की भाषा शासित वर्ग की भाषा से भिन्न होती है।

समाज का वर्चस्वशाली वर्ग हमेशा सत्ता की भाषा बोलता है। पहले जिस प्रकार संस्कृत शासक वर्ग की भाषा थी, धीरे-धीरे सत्ता परिवर्तन के बाद फारसी शासक वर्ग की भाषा बनी। अंग्रेजों के आने के बाद फारसी को हटाकर हिंदुस्तानी को स्थान दिया गया। उपन्यास में ओमप्रकाश गुप्ता उर्दू को द्वितीय राजभाषा बनाए जाने को लेकर चिंतित हो जाता हैं-

''यह उर्दू हमारे देश की भाषा नहीं है। शुद्ध रूप से विदेशी है। मुसलमानों की भाषा। इस भाषा को महत्व देने का अर्थ है मुसलमानों को महत्व देना।''[15]

सत्ता ने जिस भाषा को संरक्षण दिया वह भद्रवर्ग की भाषा रही लेकिन आम जन से दूरी रही। स्वतंत्र भारत में हिंदुस्तानी भाषा से फारसी लिपि व उर्दू को बाहर किया गया लेकिन हिंदी के बजाय उस समय के शासक वर्ग की भाषा अंग्रेजी ने कब्जा जमा लिया। लेकिन शुद्धतावादी लोगों ने अंग्रेजी के वर्चस्व को स्वीकार कर लिया। इस संबंध में वीर भारत तलवार लिखते हैं-

''सच बात तो यह है कि अंग्रेजी के द्वारा हिंदी का हक छीना जाना उन्हें इतना विचलित नहीं करता। वे अंग्रेजी के जरिए अपना कैरियर बनाने के लिए राजी हैं। उनका सारा झगड़ा बस उर्दू और मुसलमान से था।''[16]

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदुस्तानी भाषा को विभाजित करके खड़ी बोली हिंदी और उर्दू बना दिया गया। इसके साथ ही भाषा को धर्म के साथ जोड़कर इसका संप्रदायीकरण कर दिया गया। एक ही भाषा को अलग-अलग समुदायों की भाषा बताकर विवाद पैदा किया और समाज में बढ़ती संवेदनहीनता ने मनुष्य से होते हुए भाषा और संस्कृति को भी अपनी गिरफ्त में ले लिया है। इस प्रकार के भाषायी विवाद में न पड़कर भाषा को ज्ञान-विज्ञान व साहित्य के माध्यम से समाज व देश के विकास में प्रयोग किया जाना चाहिए।

संदर्भ सूची

1. बिस्मिल्लाह, अब्दुल. (2012). अपवित्र आख्यान. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्कारण. ISBN: 978-81-267-2193-1
2. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र . (2012).हिन्दी साहित्य का इतिहास. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन. आठवाँ संस्करण. ISBN: 978-81-8031-201-4
3. तलवार, वीरभारत. (2006). रस्साकशी. दिल्ली: सारांश प्रकाशन. दूसरा संशोधित संस्करण
4. शर्मा, रामविलास. (2010). भाषा और समाज. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. सातवाँ संस्करण. ISBN: 978-81-267-1527-5
5. किशोर, नन्द. (2001).भारत में बौद्ध धर्म , इस्लाम तथा सिख-धर्म. नई दिल्ली: ढाई अक्षर प्रकाशन. ISBN: 81-87617-02-0
6. ठाकुर, अभय कुमार. (2014). रघुवीर सहाय और प्रतिरोध की संस्कृति. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. प्रथम संस्करण. ISBN: 978-93-5072-671-6
7. पल्लव. (जनवरी-मार्च 2017). बनास जन. अंक-21. वर्ष-6. ISSN: 2231-6558

[13] वही, पृ.-108

[14] वजाहत, असगर, बनास जन, पृ.-82

[15] बिस्मिल्लाह, अब्दुल, अपवित्र आख्यान, पृ.-88

[16] तलवार, वीरभारत, रस्साकशी, पृ.-337